INTERNATIONAL NEWS AND VIEW CORPORATION
INVC
अंतरराष्ट्रीय समाचार एवं विचार निगम

पंचायती राज व्यवस्था : आईने में अक्स देखने का वक्त

By : INVC Team Published On : 28 Nov, 2015 12:00 AM IST

- अरुण तिवारी -

अपने नये पंचायती राज की उम्र 22 साल, सात महीने से कुछ दिन अधिक की ही हो गई है। आगे की दिशा निश्चित करने के लिए जरूरी है कि पंचायती राज के अभिभावक, आकलन करें। बतौर मानक, तीन कहानियां हमारे सामने हैं: केरल के सरपंच इलिंगों की कहानी, अलगू चैधरी व जुम्मन मियां की कहानी तथा राजस्थान के जिला अलवर में बनी अरवरी नदी के 70 गांवों की संसद की कहानी। ये तीन कहानियां, हमारे सामने क्रमशः तीन आईने रखती हैं: पहला, 73वां संविधान संशोधन का आईना और दूसरा, भारत की पारम्परिक पंच-परमेश्वरी अवधारणा का आइना और तीसरा, महात्मा गांधी से लेकर वर्तमान प्रधानमंत्री मोदी तक दिए बयानों का आईना। श्रेष्ठ केरल : श्रेष्ठ बंगाल यदि 73वें संशोधन द्वारा प्रदत पंचायती राज प्रावधानों को सामने रखें, तो केरल और पश्चिम बंगाल के पंचायतीराज अधिनियमों को क्रमशः एक व दो स्थान पर रखा जा सकता है। इन्होने, 1996 में सेन समिति द्वारा की संस्तुतियों को काफी हद तक लागू किया है। केरल में लाइसंेस, कराधान तथा ग्रामीण विकास संबंधी अधिकारी तथा एजेंसियां, पंचायतों के नियंत्रण मंे कर दी गई हैं। एकीकृत अभियांत्रिकी संवर्ग है। अपीलीय प्राधिकरण है। सरकारी अधिकारियों पर पंचायत का अधिकार है। पंचायतें कम्पयुटरीकृत हैं। निर्वाचित प्रतिनिधियों को दूरस्थ शिक्षा प्रणाली से शिक्षित किया जाता है। ग्रामसभाओं को पंचायतों की समीक्षा और तद्नुसार निर्णय लेने के काफी अधिकार हैं। केन्द्र प्रायोजित सभी ग्राम विकास योजनायें, पंचायती राज प्रणाली द्वारा ही क्रियान्वित की जाती हैं। व्यवहार की दृष्टि से पश्चिम बंगाल को अभी काफी सुधार करना है, किंतु अधिनियम के मोर्चे पर प. बंगाल काफी कुछ सिखाने लायक है। प. बंगाल मंे ग्राम पंचायत, ग्राम संसद के नाम व रूप मंे संचालित की जाती है। ग्राम संसद की सिफारिशों मानना, एक तरह की अनिवार्यता है। प्रत्येक ग्राम संसद, गांव के विकास के लिए ग्राम उन्नयन समिति का गठन करती है। यह समिति अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। सभी समितियों के पास वित्तीय अधिकार हैं। वित्त समिति में विपक्ष का नेता भी सदस्य होता है। भू-राजस्व का अधिकार भी पंचायत के पास ही है। ग्रामसभा और पंचायतों को पर्याप्त विधायी अधिकार देने के बारे में आप नवगठित राज्य झारखण्ड की भी तारीफ कर सकते है। कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब आदि को आप संतोषजनक श्रेणी मंे रख सकते हैं। उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड से आप निराश हो सकते हैं। राज्यवार आकलन एक लंबे संर्वेक्षण व शोध का विषय है, किंतु कुछ निष्कर्ष ऐसे हैं, जो पूरे भारत में पंचायती राज की जमीनी हकीकत सामने रख देते हैं। कहने को आप कह सकते हैं कि 73वें संविधान संशोधन ने गांवों में सत्ता का नया जोश भरा। कितने जनप्रतिनिधि, ग्रामप्रधानी का सिरा पकङकर केन्द्र की राजनीति में पहुंचे। नारी शक्ति को सहज ही एक अवसर सुलभ हुआ। इसके कारण खासकर, स्वयं सहायता समूहों का प्रयोग कई जगह सफल रहा है। आज पंचायतों के पास धन की कोई कमी नहीं है। कितने ही कम अधिकार हों, लेकिन फिर भी पंचायतों के पास कुछ न कुछ विकास के अवसर हैं। कई पंचायतों ने सचमुच अच्छा कर दिखाया है, किंतु क्या संतुष्ट होने के लिए इतना भर काफी है ?

निराश करते निष्कर्ष

ग्रामसभा, पंचायती राज की आत्मा है और पंचायतें, उसका आवरण। आत्मा कभी मरती नहीं है, किंतु क्या वर्तमान पंचायती राज की आत्मा जिंदा है ? नहीं, ज्यादातर राज्यों में ग्रामसभाओं का कोई अता-पता नहीं है। विकास योजना बनाने वाली ग्रामसभाओं की संख्या उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं। कितनी विडंबना है कि विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम में पंचायतीराज को पढ़ने और पढ़ाने वाले भी ग्रामसभा की बैठकों में जाना जरूरी नहीं समझते !मनरेगा ने

ग्रामसभाओं को गांवांे की विकास योजना बनाने से लेकर काम के चयन व निगरानी तक की जिम्मेदारी व अधिकार दिए हैं, किंतु ग्रामसभा से लेकर जिला स्तरीय सभाओं के निष्क्रिय व दिखावटी होने के चलते, ज्यादातर जगह पंचायतें ही प्रमुख हो गई हैं। लिहाजा, प्रधान, ब्लॉक प्रमुख और जिला पंचायत अध्यक्ष के पद महत्वपूर्ण हो गयो हैं। परिणामस्वरूप, पंचायत चुनावों में सारा जोर, इन्ही पदों के आस-पास चिपक कर रह गया है। पंचायती चुनाव, गांव समाज के आपसी सामजस्य और सद्भाव को तोडने का सबसे नुकीला औजार बन गये हैं। सरकारी अनुदान आधारित पंचायती कार्यप्रणाली, सिर्फ पंचायत प्रतिनिधियों को ही नहीं, बल्कि गांव समाज के आखिरी आदमी को भी भ्रष्ट बनाने वाली साबित हुई है। यह तो अन्तोदय होने की बजाय, भ्रष्टोदय हो गया !! सच यह भी है कि पंचायतें, आज सरकारी विकास कार्यक्रमों की क्रियान्वयन एजेंसी मात्र बनकर रह गई हैं। पंचायत प्रतिनिधियों ने भी जनता की बजाय, सरकारी अधिकारियों की एजेंट की भूमिका स्वीकार ली है। उनमें भी अपने अधिकार, कर्तव्य तथा पंचायती राज की कार्यप्रणाली व मंशा के बारे में साक्षरता, शुचिता, कौशल व जिज्ञासा का अभाव है। परिणामस्वरूप, वे किसी के अच्छे व सक्षम एजेंट नहीं बन सके; न शासन के, न प्रशासन के और न ही गांव समाज के। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की कोशिशें आज भी आधी-अधूरी ही हैं। लिहाजा, पंचायत के निर्णय, असल में नौकरशाही के निर्णय होकर रह गये हैं। हमारी ग्रामसभा और पंचायतें, ऊपरी तंत्र की बंधक बनकर रह गई हैं। वे जैसा नचाये, वैसा नाचती हैं; तो फिर स्वशासन की मंशा कहां पूरी हुई ? राज का विकास हुआ, पर पंचायती का तो ह्रास हो गया। वर्तमान पंचायती राज, गांव समाज में स्थानीय सामुदियक संसाधनों के प्रति स्वामित्व का भाव जगाने मंे असफल साबित हुआ है। महिला शक्तिकरण का दावे की पोल इसी से खुल जाती है कि ज्यादातर महिला प्रधानों के पति, न सिर्फ स्वयं का परिचय प्रधानपति कहकर देते हैं, बल्कि प्रधान के ज्यादातर कार्यों को अंजाम भी वही देते हैं। उत्तर प्रदेश के जिला और क्षेत्र पंचायत स्तरीय ताजा चुनाव को लेकर एक टी वी चैनल ने रिपोर्ट पेश की। ताज्जुब नहीं हुआ कि कितनी महिलाआंे को उस क्षेत्र का नाम ही नहीं पता था, जिसका प्रतिनिधित्व करने के लिए वे नामांकन दाखिल कर रही थी। सब, पति के कहने पर आई थीं।

मूल चूक

कहना न होगा कि वर्तमान पंचायतीराज प्रणाली की सारी की सारी सफलता, पंचायत प्रतिनिधि व विकास अधिकारियों की जागृति, ईमानदारी, कुशलता, विवेक, मंशा और सरकारी अनुदान की रहमोकरम पर आकर टिक गई है; जबकि प्रणाली वह अच्छी मानी जाती है, जिसमें व्यक्ति कैसा भी हो, प्रणाली उसे ईमानदारी, कुशलता, अच्छी मंशा, सद्विवेक, सक्षमता व स्वावलंबन के साथ कार्य करने को बाध्य करती हो। कितने ताज्जुब की बात है कि पंचायती राज में गांवों को परिभाषित करने का अधिकार गांवों के पास न होकर, राज्यपाल के पास है! 73वें संविधान संशोधन का अनुच्छेद 243 ख का आशय यही है। मेरा मानना है कि मूल चूक, पंचायती राज की वर्तमान प्रणाली में ही है। यह प्रणाली, हमारे गांवों को उस पंच-परमेश्वरी अवधारणा से दूर करती है, जिसकी मौजूदगी के कारण भारतीय गांवों के बारे में लॉर्ड मेटकॉफ (1830) ने लिखा -"वे ऐसी परिस्थितियों में भी टिके रहते हैं, जिनमे हर दूसरी वस्तु का अस्तित्व मिट जाता है।" गौर कीजिए कि वर्तमान पंचायती राज, गांवों को प्रशासनिक व क्रियान्वयन इकाई बनाने पर आमादा है, जबकि गांव, मूल रूप से एक सांस्कृतिक इकाई है। पंचायती राज भूल गया है कि गांव, संबंधों की नींव पर बनते हंै और शहर, सुविधा की नींव पर। भारतीय संस्कृति के दो मूलाधार तत्व हैं: सहजीवन और सहअस्तित्व। सहजीवन, परिवार का आधार है और सहअस्तित्व, पडोस का। इन दोनो तत्वों की जुगलबंदी से ही गांव बने और बसे। जब तक ये दो तत्व रहेंगे, गांव, गांव रहेगा; वरना् वह कुछ और हो जायेगा। क्या वर्तमान पंचायती राज प्रणाली, इन दो तत्वों की संरक्षक भूमिका में है ? नहीं, वह तो सुविधा देने वाली अक्षम क्रियान्वयन इकाइयों की निर्माता बनकर रह गई है। इस कारण भी हमारे गांवों का गांव बने रहना, दिन-ब-दिन मुश्किल होता जा रहा है। गांव ने शहरों की बुराइयां तो अपना ली हैं, लेकिन अपनी अच्छाइयों की रक्षा करने में अब वह असमर्थ सिद्ध हो रहा है; लिहाजा, मेरा मानना है कि पंचायती राज की मौजूदा प्रणाली को एक बार फिर सुधार की जरूरत है। आइये, हम अपना आईना बदलें।

आईना बदलने की जरूरत

सांस्कृतिक इकाई के रूप में गांव निर्माण को आईना बनाकर हम याद करें कि पंचायतें कैसे अस्तित्व में आईं ? जब किसी परिवार के सदस्यों का एक छत के नीचे साथ-साथ रहना संकट में पडा या पडोसियों के बीच एक-दूसरे के अस्तित्व में खलल डालने की मंशा से द्वंद पैदा हुआ अथवा साझी समृद्धि के कुछ सकारात्मक काम करने हुए ; इन तीन स्थितियों मंे ही पंचायतों की असल जरूरत महसूस हुई। जिन्होने इन स्थितियों में नेतृत्व संभाला ; जिन पर गांव ने भरोसा किया, वे पंच हो गये। उनसे सद् और सर्वकल्याणकारी बोध के साथ निर्णय लेने का भरोसा था, अतः उन्हे ईश्वर से भी ऊंचा यानी परमेश्वर माना गया। स्वानुशासन, प्रभुत्व का अभाव और सुशासन - इन तीन गुणों साथ ही कोई पंच, परमेश्वर का अपना दर्जा बनाये रख सका। गौर करें कि पंचायतें, मूल रूप से कोई औपचारिक इकाई नहीं थी ; पारम्परिक पंचायतें, एक जीवनशैली थीं। संवाद, सहमति, सहयोग, सहभाग और सहकार की प्रक्रिया, इस जीवनशैली के संचालक पांच सूत्र थे। क्या आज हमारी वर्तमान पंचायतें, इन सूत्रों और उक्त गुणों के साथ बनाई व चलाई जा रही है ? आईना यह हो। राज और सत्ता, राजशाही के तत्व हैं। सत्ता, हमेशा से ही सुख, सुविधा, भोग, मद, हिंसा व वर्चस्व का दूसरा नाम है। ऐसे में यदि आज पंचायतों के प्रमुख पदों के लिए मार-काट है, तो ताज्जुब क्यों ? लोकतंत्र में लोक और लोकप्रतिनिधि होते हैं। फिर भी हमने पंचायती इकाइयों को पंचायती राज संस्थान कहा। लोकप्रतिनिधियों को हम राजनेता कहते ही हैं। यदि एक राजा है, तो दूसरे प्रजा होंगे ही। ऐसे में यदि हमारी पंचायत, विधानमण्डल व संसद, लोक प्रतिनिधि सभा होने की बजाय, सत्ता का केन्द्र हो गईं हैं, तो इसमे ताज्जुब नहीं होना चाहिए।

कुछ सुझाव

यदि हम पंचायतों को सही मायने में लोकप्रतिनिधि इकाई के तौर पर देखना चाहते हैं, तो सबसे पहले हमे भारतीय संविधान के दस्तावेज से राज और सत्ता, इन दो शब्दों और इनका आभास कराने वाले प्रावधानों को निकाल फेंकना होगा। राज की जगह, लोक और सत्ता की जगह, प्रतिनिधि सभा का प्रयोग करना होगा। पंचायती प्रणाली को सुविधा से ज्यादा, संबंध सुधारने वाली सद्विवेकी, स्वावलंबी व सर्वकल्याणकारी सांस्कृतिक प्रणाली के रूप मंे तब्दील करें। प्रणाली ऐसी हो, जिसमें ग्रामसभा की उपस्थिति, अधिकतम तथा पंचायत की उपस्थिति, न्यूनतम महसूस हो। आवश्यक है कि ग्रामसभा को भूमि समेत अपने सभी स्थानीय संसाधनों के प्रबंधन, उन्नयन, विवाद निपटारा, क्रय-विक्रय, कर वसूली तथा अर्जित संसाधनों के ग्रामोपयोग के निर्णायक अधिकार सौंप दिया जाये। पंचायत, शासन व प्रशासन की भूमिका सिर्फ सहयोगी की हो। आवश्यक है कि ग्रामसभा, प्रति माह कम से कम एक बार तो साथ बैठे ही। गांव योजना बनाना तथा पैसे व काम का अंकेक्षण करना जैसे काम प्रत्येक ग्रामसभा के लिए आवश्यक हों। सरकारी अनुदान की स्थिति में गांव का अंशदान आवश्यक हो। आर्थिक स्थितिनुसार अंशदान प्रतिशत तय करने का अधिकार ग्रामसभा, पंचायत व प्रशासन का साझा हो। यह अंशदान, श्रम, सामग्री तथा नकरात्मक गुणों से मुक्ति के रूप में देने की छूट हो। अनुदान राशि व सामग्री की मात्रा, ग्रामयोजना की आवश्यकतानुसार हो। वह सीधे ग्रामसभा के कोष में पहंुचे। इसके लिए ग्रामसभा को किसी के चक्कर न लगाने पडें। हर पिछले वर्ष के अनुपात मंे अगले वर्ष बेहतर स्वावलंबन, बेहतर स्वयं सहायता समूह गतिविधि, बेहतर शिक्षा, बेहतर कौशल विकास, सार्वजनिक रकबे व संसाधनों के बेहतर प्रबंधन, बेहतर स्वच्छता, बेहतर स्वास्थ्य प्रदर्शन, जैविक खेती का ज्यादा रकबा, ज्यादा जलसंचयन व ज्यादा आय करने वाली ग्रामसभाओं को तद्नुसार संबंधित मद में प्रोत्साहन राशि/सामग्री प्राप्त होने का अधिकार हो। इसी तरह गत् वर्ष के अनुपात में कम कर्ज, कम खपत, कम अपराध, कम प्रथम सूचना रिपोर्ट, कम मुकदमे वाली ग्रामसभाओं को अधिक अनुदान प्राप्त करने का अधिकार दिया जाये। हरियाणा सरकार द्वारा पंचायतों मंे चुनाव हेतु न्यूनतम शैक्षिक योग्यता के प्रावधान को सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहकर खारिज कर दिया कि जब संसद के चुनाव के लिए ही कोई न्यूनतम शैक्षिक योग्यता नहीं है, तो पंचायत के लिए क्यूं ? जरूरी है कि न्यूनतम शिक्षा, न्यूनतम नैतिकता और शून्य आपराधिक रिकॉर्ड सभी स्तर के चुनावों में उम्मीदवारी की न्यूनतम अर्हता बने। ये सिर्फ कुछ सुझाव हैं। सार्थकता की दृष्टि से इनमें से प्रत्येक बिंदु, गंभीर बहस का विषय हो सकता हैं, किंतु अरवरी नदी संसद की सार्थकता पर कोई बहस नहीं है। गांवों के बारे में सीखने के लिए ग्राम गुरु से अच्छा कोई गुरु नहीं। अरवरी नदी संसद, ग्राम गुरु है। इसके बारे में अवश्य जानें, देखें और सीखें; ताकि पंचायती का विकास हो, पर राज करने का भाव गायब हो जाये।

.....

जनतंत्र का अनुपम प्रयोग : अरवरी संसद

राजस्थान, जिला अलवर की नदी अरवरी और उसके 70 गांवांे की पंचायत का नाम है - अरवरी संसद। 70 गांवों की ग्रामसभा के चुनिंदा 187 सांसद, इसके प्रतिनिधि हैं। हालांकि, ये प्रतिनिधि पंचायती राज प्रणाली की संवैधानिक चुनाव प्रक्रिया से चुने पंच-सरपंच नहीं हैं; बावजूद इसके, इन 70 गांवों की खेती, ज़मीन, जंगल, नदी, तालाब आदि का प्रबंधन और फैसला यही करते हैं। इनके अपने नियम हैं; पालना, प्रोत्साहन व दण्डित करने की अपनी प्रणाली है। नियम है कि चुनाव सर्वसम्मति से हो। अपरिहार्य स्थिति में भी उम्मीदवार को कम से कम 50 प्रतिशत सदस्यों का समर्थन अवश्य प्राप्त हो। जब तक ऐसा न हो जाये, उस गांव का प्रतिनिधित्व संसद में शामिल न किया जाये। असंतुष्ट होने पर ग्रामसभा, सांसद बदल सकती है। ऐसे कितने ही उदाहरण हैं, जो बताते हैं कि अरवरी संसद ने सिर्फ नियम ही नहीं बनाये, इनकी पालना भी की। अरवरी संसद के बनाये सारे नियम 70 गांवों की व्यवस्था को स्वानुशासन की ओर ले जाते हैं। इस स्वानुशासन का ही नतीजा है कि स्वास्थ्य, शिक्षा से लेकर प्रति व्यक्ति आय के आंकङों में यह इलाका पहले से आगे है। अपराध घटे हैं और टूटन भी। इस बीच अरवरी के इस इलाके मंे एक-दो नहीं तीन-तीन साला अकाल आये ; लेकिन नदी मंे पानी रहा ; कुंए अंधे नहीं हुए। आज इस इलाके में 'पब्लिक सेचुरी' ळे ; 'पब्लिक सेन्चुरी' यानी जनता द्वारा खुद आरक्षित वनक्षेत्र। शायद ही देश मंे कोई दूसरी घोषित पब्लिक सैन्चुरी हो। अरवरी के गांवों में खुद के बनाये जोहङ, तालाब, एनीकट.. मेङबंदियां हैं। यहां भांवता-कोल्याला जैसे अनोखे गांव हैं, जिन्होने एक लाख रुपये का पुरस्कार लेने के लिए राष्ट्रपति भवन जाने से इंकार कर दिया, तो तत्कालीन राष्ट्रपति के. आर. नारायणन खुद उनके गांव गये। देश-विदेश के सर्वोच्च इंजीनियरिंग, विकास, पंचायत व प्रबंधन संस्थानों के प्रतिनिधियों से लेकर भारत के सांसद, पानी मंत्री, आर एस एस के पूर्व प्रमुख स्व. श्री सुदर्शन, ब्रिटिश प्रिंस चाल्र्स तक.....जाने कितनी हस्तियों ने खुद जाकर स्वानुशासन और एकता की इस मिसाल को बार-बार देखा। सत्याग्रह मीमांसा-अंक 169 (जनवरी 2000) में प्रख्यात गांधीवादी नेता स्वर्गीय सिद्धराज ढड्ढा ने अरवरी संसद की खूबी बताते हुए लिखा - "आज की संसद के निर्णयों तथा उसके बनाये कानूनों की पालना का अंतिम आधार पुलिस, फौज, अदालतें और जेल हैं। अरवरी संसद के पास अपने निर्णयों की पालना के लिए ऐसे कोई आधार नहीं हैं; न ही होने चाहिए। जनसंसद का एकमात्र आधार लोगों की एकता, अपने वचनपालन की प्रतिबद्धता ओर परस्पर विश्वास है। यही जनतंत्र की वास्तविक शक्तियां हैं। अतः अरवरी संसद का प्रयोग केवल अरवरी क्षेत्र के लिए नहीं....समूचे जनतंत्र के भविष्य के लिए भी महत्वपूर्ण है।" श्री ढड्ढा के बयान और अरवरी संसद की कार्यप्रणाली से क्या कभी देश की संसद, विधायिका और पंचायतें कुछ सीखेगी ?

.....

क्यों ऐतिहासिक 73वां संशोधन ??

यह ऐतिहासिक इसलिए था, चूंकि 73वें संविधान संशोधन के बाद ही हमारी पंचायतों को संवैधानिक दर्जा हासिल हुआ। 73 वें संविधान संशोधन के बाद ही, संविधान के अनुच्छेद 40 में नीति निर्देशक सिद्धांत के रूप में पूर्व मंे दी गई सलाह को मानना, हमारी राज्य सरकारों की बाध्यता बन गई। संविधान के भाग-आठ के पश्चात् भाग-नौ को जोङकर, उसमें अनुच्छेद 243 को शामिल करने से ऐसा हुआ। 73वें संशोधन ने पंचायतों के लिए गांव, ब्लॉक और जिला यानी त्रिस्तरीय व्यवस्था बनाई। 73वें संशोधन ने पांच वर्षीय कार्यकाल की अनिवार्यता सुनिश्चित की। इससे पहले ऐसा नहीं था। लिहाजा, इससे पहले कई राज्यों में 20-20 साल तक पंचायती चुनाव नहीं हुए। सभी स्तर पर सीधे जनता द्वारा चुनाव, जनसख्या के अनुपात में निर्वाचन क्षेत्र का परिसीमन, अनुसूचित जाति-जनजाति का आबादी आधारित आरक्षण तथा प्रधान/प्रमुख/ अध्यक्ष पदों पर महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटों के आरक्षण का प्रावधान भी 73वें संशोधन की बदौलत हुआ। पिछङे वर्गों हेतु सीटों के आरक्षण का मुद्दा राज्य सरकारों पर छोङा गया । 73वें संशोधन ने संसाधनों की व्यवस्था हेतु राज्य वित आयोग तथा चुनाव हेतु राज्य चुनाव आयोगों के गठन का रास्ता खोला। 11वीं अनुसूची के माध्यम से विकास संबंधी 29 विभागांे के काम पंचायतों के सुपुर्द कर दिए। सबसे महत्वपूर्ण कदम, ग्रामसभाओं के गठन को अनिवार्य बनाना तथा राज्यों के विधानमण्डलों को यह निर्देश देना था कि वे ग्रामसभाओं को अधिकार देने के लिए अपने-अपने स्तर कानून बनायें। ऐसे उल्लेखनीय प्रावधानों साथ 24 अप्रैल, 1993 को नया पंचायती राज कानून पूरे देश पर लागू हो गया। राज्यों को समय दिया गया कि वे अपने-अपने राज्यों के पंचायत अधिनियमों को 73वें संविधान संशोधन के अनुरूप, संशोधित कर लें।

महात्मा से मोदी तक : पंचायती सपना

महात्मा गांधी ने गांवों की आज़ादी के बगैर, भारत की आज़ादी को अधूरा बताया ; आज़ादी यानी गांव समाज को अपने बारे में स्वयं सोचने, स्वयं निर्णय लेने और स्वयं क्रियान्वित करने की आज़ादी ! उन्होने लिखा : "सच्चा लोकतंत्र, केन्द्र में बैठे हुए 20 व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा सकता। उसे प्रत्येक गांव के लोगों को नीचे से चलाना होगा।.. स्वतंत्रता नीचे से प्रारम्भ होनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक गांव, एक प्रजातंत्र अथवा पंचायत होगा, जिसके हाथ में सम्पूर्ण सत्ता होगी। यह पंचायत, अपने कार्यकाल मंे स्वयं ही धारा सभा, न्याय सभा और व्यवस्थापिका सभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी।... अगर हिंदुस्तान के हर गांव में कभी पंचायती राज कायम हुआ, तो मैं अपनी इस तस्वीर की सच्चाई साबित कर सकूंगा, जिसमें सबसे पहला और सबसे आखिरी..दोनो बराबर होंगे या यों कहिए कि न कोई पहला होगा और न कोई आखिरी।" डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने संविधान का ढांचा, ग्राम पंचायतों तथा अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली के अनुसार खडी की गई मंजिलों के आधारित होने की बात कही। पं. जवाहरलाल नेहरु के शब्द थे : "लोकतंत्र के बल यह नहीं है कि राज्यों में या शिखर पर संसद हो, बल्कि यह कुछ ऐसी चीज है, जो प्रत्येक व्यक्ति की शक्तियों को उभारती हो और उसे प्रशिक्षित कर इस लायक बनाती हो कि वह देश में अपना समुचित स्थान और आवश्यकता पडने पर कोई भी स्थान ग्रहण कर सके।.... हमें गांवों में सत्ता और अधिकार, खासतौर से लोगों के हाथ सौंप देने चाहिए।" लोकनायक जयप्रकाश नारायण गावों में सहभागी लोकतंत्र के पक्षधर थे। वह यह भी चाहते थे कि पंचायतें, ग्रामसभा की कार्यकारिणी के रूप मंे कार्य करे। जे पी और संत विनोबा..दोनो ही बहुमत की बजाय, निर्विरोध पंचायती चुनाव के पक्षधर थे। राममनोहर लोहिया जी ने गांव, जिला, राज्य और केन्द्र.. चार समान प्रतिभा और समान मान युक्त खंभों वाले 'चैखंभा राज्य' की परिकल्पना पेश की। राजीव गांधी ने जनता को सारी सत्ता सौंपने का सपना लिया। बाबा गौडा पाटिल ने स्पष्ट कहा कि कथित विकास की धुन ने पंचायती संस्थाओं को राज्य सरकारों के शक्तिशाली तंत्र के पिछलग्गू के रूप में विवश कर दिया है। उनकी राय थी कि भूमि समेत स्थानीय संसाधनों का प्रबंधन व विवादों का निपटारे का अधिकार ग्रामसभा को सौंपे बगैर, स्वशासन संभव नहीं। वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने माना कि पंचायतों से हमारी संस्कृति का प्रवाह बहता है। अतः गांवों का राजनीति से मुक्त रखना, गांवों के व्यापक हित में है। वह, ग्राम सचिवालयों को चुटकी बजाते समस्या समाधान करने में सक्षम व्यवस्था के रूप में देखना चाहते हैं। समरसता बढ़ाने की दृष्टि से तीन वर्ष और पांच वर्ष तक बिना मुकदमे वाले गांवों को क्रमशः 'पावन गांव' और 'तीर्थ गांव' का दर्जा देने की बात वह पहले ही कह चुके हैं।

.....

आज़ाद भारत में पंचायती राज : 1948-1993

ग्रामसभा, पंचायती राज की आत्मा है और ग्राम पंचायत, पंचायती राज का आवरण। कितना दुखद यहां यह लिखना है कि भारत की प्रथम संविधान सभा ने न भारत के गांव समाज की आत्मा को समझा और न आवरण को ; बावजूद इसके कि संविधान बनाते वक्त, संभवतः संविधान सभा के किसी सदस्य ने ही राष्ट्रपिता को चिट्ठी लिखकर इस ओर ध्यान भी दिलाया। राष्ट्रपिता गांधी ने भी सुझाव को अनुकूल टिप्पणी के साथ 'हरिजन' अखबार में प्रकाशित कर आगे बढ़ाया। पंचायती राज की संकल्पना प्रस्तुत करते हुए उन्होने स्पष्ट लिखा कि भारत के सात लाख गांवों की आज़ादी के बग़ैर, भारत की आज़ादी अधूरी है। आज़ादी नीचे से शुरु होनी चाहिए। गांवों की आज़ादी से उनका मतलब था, अपने बारे मंे खुद सोचने, निर्णय करने और अपने द्वारा किए गये निर्णय को खुद ही क्रियान्वित करने की आज़ादी। इससे चेते डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने संविधान सभा के अध्यक्ष के तौर पर 10 मई, 1948 को संविधान सभा में दिए अपने भाषण में विचार भी दिया कि संविधान का ढांचा, ग्राम पंचायतों तथा अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली के अनुसार खडी की गई मंज़िलों पर आधारित होना चाहिए। मुद्दे पर बहस भ्हुई। सैंकडों संशोधन प्रस्तुत किए गये, किंतु अंत में सभा के संवैधानिक सलाहकार श्री वी. एन. राव ने समयाभाव का तर्क देकर, मसले को संघ और राज्य विधायिकाओं के विचारार्थ छोड सलाह दे डाली। संविधान सभा ने इसे मान भी लिया। 22 नवम्बर, 1948 को श्री के. संतानम् ने इस

बाबत् संशोधन प्रस्तुत किया। डॉ. अम्बेडकर ने इसे स्वीकृत कर अनुच्छेद-40 के रूप में संविधान का हिस्सा बना दिया। अनुच्छेद-40 में लिखा गया -"राज्य, ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठायेगा और उन्हे ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा, जो स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।" गौरतलब है कि संविधान में 'राज्य' शब्द की व्याख्या, भारत की सरकार, संसद, राज्यों में से प्रत्येक राज्य की सरकार, विधानमण्डल तथा भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी (अनुच्छेद-12) के तौर पर की गई है। संवैधानिक व्याख्या के खिलाफ, पंचायतों को प्रांतीय सरकारों के रहमोकरम पर छोड़ दिया गया। तब से अब तक पंचायतें, राज्यों के रहमोकरम पर ही हैं। 'स्वाशासन की इकाइयों' का मतलब भी अलग-अलग रहकर काम करना मान लिया गया, जबकि इसका मतलब पंचायतों को स्वशासन की वृहत्तर इकाइयों का अंग बनाना था। संविधान सभा की चूक और अनुच्छेद की गलत व्याख्या का नतीजा यह हुआ कि नये भारत के निर्माण मंे पंचायतों के माध्यम से ग्राम स्वराज हासिल करने का गांधी का सपना, सपना ही रह गया। संभवत: यह इसलिए हुआ कि जिस आम आदमी की आज़ादी के लिए आज़ादी का संघर्ष हुआ, उस आम आदमी के परम्परागत क्षमता, कौशल और ज्ञान पर हमारे संविधान निर्माताओं को विश्वास ही नहीं था। हालांकि, कालांतर में प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु का बयान भी आया कि यह दलील दी जाती है कि किसान अधिक जानता नहीं, किंतु यह दलील बुनियादी तौर पर गलत है। उन्होने इस दलील को गलत साबित करने की कोशिश भी की। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के असफलता ने सबक सिखाया। मई, 1956 मंे विकास आयुक्तों के कार्यक्रम में बोलते हुए सामुदायिक विकास कार्यक्रम की समीक्षा करते हुए पंडित नेहरु ने कहा-" सामुदियक विकास कार्यक्रम लाजमी तौर पर ग्राम पंचायतों और सहकारी समितियांे के साथ पूरा तालमेल होना चाहिए। इन सब मामलांे पर हमें लोगों की पहल को जगाना चाहिए ; ताकि वे सरकारी एजेंसियों के मुकाबले कहीं ज्यादा खुद पर भरोसा कर सकें।" कह सकते हैं कि 1956 वह वर्ष था, जब शासन को वाकई ग्राम पंचायतों की जरूरत महसूस हुई। जनवरी, 1957 बलवन्तराय मेहता समिति गठित कर दी गई। समिति ने 24 नवम्बर, 1957 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। मेहता समिति ने गांव, ब्लॉक, ज़िला... त्रिस्तरीय पंचायत प्रणाली की स्थापना, पंचायतों को वास्तविक सत्ता और दायित्वों का हस्तानान्तरण, उचित वित्तीय साधन तथा सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों एवम् योजनाओं के क्रियान्वयन का दायित्व सौंपने की सिफारिश की। इसे स्वीकारा गया। आग़ाज जोरदार भी हुआ, किंतु प्रांतीय सरकारों द्वारा तवज्जो न दिए जाने के कारण फिर सन्नाटा छा गया। 'कुरुक्षेत्र पत्रिका' के अक्तूबर, 1960 के अंक में जयप्रकाश नारायण ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम के विरोध में हो रहे आंदोलनों का संदर्भ रखते हुए इस पर सकारात्मक टिप्पणी भी की। उन्होने सहभागी लोकतंत्र के रूप में ग्राम पंचायत की अवधारणा प्रस्तुत की। प्रख्यात समाजवादी विचारक-राममनोहर लोहिया जी गांव, जिला, राज्य और केन्द्र.. चार समान प्रतिभा और सम्मान वाले खंभों वाले चैखंभा राज्य की अपनी परिकल्पना की आगे बढ़ाने के प्रयास करते रहे। भूदान के जनक-संत विनोबा ने "ग्रामराज के तालाबों में, आज़ादी का कमल खिले...." जैसी पंक्तियों के माध्यम से गांवों को गोकुल बनाने के चित्र बनाया। इस बीच 1978 में बनी अशोक मेहता समिति ने भी यह सुझाव देकर शासन का ध्यान खींचने की कोशिश की कि अधिकारी और कर्मचारी, जनप्रतिनिधियों के प्रति प्रति किसी भी प्रकार उत्तरदायी नहीं है। अत: इन अधिकारियों को गांवों की निर्वाचित पंचायत के माध्यम से ग्रामसभा के प्रति उत्तरदायी बनाया जाये। समिति ने क्षेत्र और जिला पंचायतों को पर्याप्त महत्व देने की सिफारिश भी की। गांवों की आज़ादी की वकालत का यह दौर आगे भी जारी रहा। 1985 में जे वी के राय समिति ने राज्य की शक्तियों को स्थानीय लोकतांत्रिक संस्थाओं को हस्तांतरित करने की सिफारिश की। 1986 में गठित डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी समिति ने संविधान मंे एक नया अध्याय जोड़कर पंचायतों को संवैधानिक तौर पर मान्यता, संरक्षण और स्थायित्व प्रदान करने की सिफारिश की। इसके लिए समिति ने गावों के पुनर्गठन, पंचायत को स्वाशासन इकाई के रूप में प्रतिष्ठित करने, पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराने और पंचायतों के लिए अलग से पंचायती राज न्यायिक अभिकरण बनाने के सुझाव भी दिए। समिति की सिफारिशों के आधार पर राजीव गांधी के नेतृत्व वाली तत्कालीन सरकार ने पहल की। पंचायती राज का नया मसौदा तैयार किया। प्रस्तुत मसौदा, 64वें संविधान संशोधन के तौर पर 10 अगस्त, 1986 को लोकसभा द्वारा मंजूर भी कर लिया गया, किंतु राज्य सभा ने इसे विधेयक को अनुमोदित नहीं किया। इस नामंजूरी की एक बड़ी वजह यह थी कि इस मसौदा की सदन में प्रस्तुति से पूर्व अलग-अलग अवसरों पर प्रस्तुत की गई मंशा सचमुच बहुत क्रांतिकारी थी। फिर सत्ता बदल गई। विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व वाली सरकार इस मसौदे पर कुछ नहीं कर सकी। 1991 में प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने राजीव गांधी के सपने को आगे बढाते हुए 73वां संविधान संशोधन का प्रस्ताव लोकसभा में प्रस्तुत कर दिया। विधेयक, संयुक्त संसदीय समिति के पास गया। समिति के सुझावों के बाद 22 दिसम्बर, 1992 को लोकसभा ने अपनी मंजूरी मोहर लगा दी। 24 अप्रैल, 1993 से पंचायती राज का नया कानून लागू हो गया। इस नये कानून के अनुरूप, राज्य स्तरीय पंचायत अधिनियमों को नये कानून के अनुरूप संशोधित करने के लिए राज्यों को एक वर्ष का समय दिया गया।

पंचायती राज और राजीव गांधी

"जब हम पंचायत को वही दर्जा देंगे, जो संसद और विधान सभाओं को प्राप्त है, तो हम लोकतांत्रिक भागीदारी में सात लाख लोगों की भागीदारी के दरवाजे खोल देंगे।..सत्ता ने इस तंत्र पर कब्जा कर लिया है। सत्ता के दलालों के हित मंे इस तंत्र का संचालन हो रहा है.... सत्ता के दलालों के नागपाश को तोङने का एक ही तरीका है और वह यह है कि जो जगह उन्होने घेर रखी है, उसे लोकतंत्र की प्रक्रियाओं द्वारा भरा जाय।....सत्ता के गलियारों से दलालों को निकाल कर, पंचायतंे जनता को सौंपकर, हम जनता के प्रतिनिधियों पर और जिम्मेदारी डाल रहे हैं कि वे सबसे पहले उन लोगों पर ध्यान दें, जो सबसे करीब हैं, सबसे वंचित हैं. सबसे जरूरतमंद हैं।....हमें जनता में भरोसा ळं जनता को ही अपनी किस्मत तय करनी है और इस देश की किस्मत भी। आइये, हम भारत के लोगों को अधिकतम लोकतंत्र दें और अधिकतम सत्ता सुपुर्द कर दें। आइये, हम सत्ता से दलालों का खात्मा कर दें। आइये, हम जनता को सारी सत्ता सौंप दें।" ये वाक्य, उस भाषण का अंश हैं, जो पंचायती राज विधेयक को संसद के पटल पर रखते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने दिया था। यह वह दौर था, जिससे काफी पहले ही हमारी जनप्रतिनिधि सभायें, जनप्रतिनिधित्व की बजाय, सत्ता का केन्द्र समझी जाने लगी थीं ; हमारे जनप्रतिनिधि, स्वयं को राजा और जनता को बेजान प्रजा ही समझने लगे थे। वे इस तरह व्यवहार करने लगे थे कि मानो वे किसी और लोक के प्राणी हों। उन्होने अपने आसपास एक ऐसा रौब और दायरा बना लिया था, कि वे भारत की आत्मा से कट गये थे। ऐसे दौर में ऐसी खुली बात !ऐसी उदार मंशा !आमजन की भाषा और आंतरिक भाव के साथ भारत की संसद में इतना कटु सत्य कहना, एक प्रधानमंत्री के लिए सचमुच बहुत हिम्मत की बात थी। कहना न होगा कि कभी इतने क्रांतिकारी उद्बोधन के साथ भारत के वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था की नींव रखी गई।

.....

अतीत का सबक : स्वानुशासन, तभी सुराज

'सहजीवन' और 'सहअस्तित्व' की सांस्कृतिक बुनियाद जीवन विकास संबंधी डार्विन के उस वैज्ञानिक सिद्धांत को पुष्ट करती है, जो परिस्थिति के प्रतिकूल रहने पर मिट जाने और अनुकूल तथा सक्रिय रहने पर विकसित होने की बात कहता है। स्पष्ट है कि साथ रहना है और एक-दूसरे का अस्तित्व मिटाये बगैर। लेकिन ऐसा कब होगा ? ऐसा तब होगा, जब प्रत्येक समुदाय स्वानुशासित होगा। इस तैयारी और मानसिकता के साथ चलने वाली कोई भी व्यवस्था. सुव्यवस्था हो सकती है ; फिर भले ही वह राजतंत्र ही क्यों न हो। भारत का इतिहास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। सिंधु घाटी सभ्यता इसमें एक बात और जोङती है ; वह है प्रभुत्व का भाव न वास्तविक हो और न ही दिखावटी। आइये ! जरा अतीत के और पन्ने पलटें। वैदिक साहित्य में विशः, सभा, समिति और नरिष्ठा जैसे नाम से इनका उल्लेख कई बार किया गया है। विशः ऐसी समिति थी, जो राजा तक का चुनाव करती थी। इसी समिति के माध्यम से प्रत्येक गांव मंे एक नेता चुना जाता था। उसे 'ग्रामणी' कहा जाता था। प्रत्येक गांव एक छोटा सा स्वायत्त राज्य था। स्वायत्त होने के बावजूद यह व्यवस्था अराजक नहीं थी। क्यों ? क्योंकि राजा व गांव एक-दूसरे की सत्ता को चुनौती देने की बजाय एक-दूसरे के पोषक और रक्षक की भूमिका में थे। "सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।"ं (अथर्ववेद 7/12/1) यानी सभा-समितियां दुहिता यानी पुत्री के समान हैं। राजा इसी भांति उनका पोषण करे और ये दोनो मिलकर राजा की रक्षा करें। यह थी सहजीवन और सहअस्तित्व पर टिकी सुव्यवस्था...सुशासन ! जिसने राजा को चुना, राजा उसे पुत्री समान समझ कर पोषण करे और पुत्रियां वक्त आने पर राजा की रक्षा करें। ध्यान देने की बात है कि श्लोक समितियों को 'पुत्र' न कह कर 'पुत्री' समान कहता है। क्यों ? क्योंकि पिता-पुत्री संबंधों की मर्यादायें कुछ भिन्न होती हैं। अपनी निजी आजीविका... उपभोग हेतु पिता को पुत्री की कमाई का धन निषेध था। राजा का पद वंशानुगत भी होता था ; बावजूद इसके किसी भी हालत में राजा को आर्य नियमों के विरुद्ध जाने नहीं दिया जाता था। वाल्मीकि रामायण में गणराज्यों और उनके मेल से बने संघों का वर्णन है। रामायण कालीन राज्य सभा में सर्वाधिक शक्तिशाली अंग 'पौर जनपद' था। पौर जनपद में राजधानी के नैगम और गण्वल्लभ तथा ग्रामप्रांत के ग्रामघोष, महत्तर और समविष्ट होते थे। स्पष्ट है कि गांव समितियों का हस्तक्षेप तब राज्यसभा तक था। समझ सकते हैं कि ये समितियां राजा के लिए कितनी महत्वपूर्ण रहीं होंगी। मौर्य कालीन व्यवस्था में राजा ने कभी ग्रामीण संस्थाओं के कार्य मंे हस्तक्षेप नहीं किया ; बावजूद इसके लोग स्वेच्छा से नियमों का पालन करते थे। कहना न होगा कि सुशासन तानाशाही, जबरदस्ती या प्रताङना की बजाय स्वप्रेरणा व स्वानुशासन पर आधारित व्यवस्था का नाम है।

स्वानुशासन.. सुशासन की पहली निशानी है। अंग्रेजों ने सबसे पहले इसी निशान को तोड़ा। इसके निशान के टूटने के दुष्परिणाम भारत आज तक भुगत रहा है। उन्होने भूमि व्यवस्था, जंमीदरी प्रथा और दूसरे कानूनों के जरिए सबसे पहले ग्रामीण संस्थाओं में ही हस्तक्षेप किया। स्वराज, स्वानुशासन के निशान को वापस नहीं ला सका। क्यों ? क्योंकि हमने स्वराज का मतलब 'अपना राज' समझ लिया ; जबकि 'स्वराज' का असल मतलब अपने ऊपर खुद का राज है...स्वानुशासन ! यह 'स्वानुशासन' ही किसी भी प्रकार के तंत्र में 'सुशासन' की गारंटी देने में सक्षम है। 'स्वानुशासन' 'सुराज' का मूलमंत्र है।

....

परिचय -:

अरुण तिवारी

लेखक ,वरिष्ट पत्रकार व् सामजिक कार्यकर्ता

1989 में बतौर प्रशिक्षु पत्रकार दिल्ली प्रेस प्रकाशन में नौकरी के बाद चौथी दुनिया साप्ताहिक, दैनिक जागरण-दिल्ली, समय सूत्रधार पाक्षिक में क्रमशः उपसंपादक, वरिष्ठ उपसंपादक कार्य। जनसत्ता, दैनिक जागरण, हिंदुस्तान, अमर उजाला, नई दुनिया, सहारा समय, चौथी दुनिया, समय सूत्रधार, कुरुक्षेत्र और माया के अतिरिक्त कई सामाजिक पत्रिकाओं में रिपोर्ट लेख, फीचर आदि प्रकाशित।

1986 से आकाशवाणी, दिल्ली के युववाणी कार्यक्रम से स्वतंत्र लेखन व पत्रकारिता की शुरुआत। नाटक कलाकार के रूप में मान्य। 1988 से 1995 तक आकाशवाणी के विदेश प्रसारण प्रभाग, विविध भारती एवं राष्ट्रीय प्रसारण सेवा से बतौर हिंदी उद्घोषक एवं प्रस्तोता जुड़ाव।

इस दौरान मनभावन, महफिल, इधर-उधर, विविधा, इस सप्ताह, भारतवाणी, भारत दर्शन तथा कई अन्य महत्वपूर्ण ओ बी व फीचर कार्यक्रमों की प्रस्तुति। श्रोता अनुसंधान एकांश हेतु रिकार्डिंग पर आधारित सर्वेक्षण। कालांतर में राष्ट्रीय वार्ता, सामयिकी, उद्योग पत्रिका के अलावा निजी निर्माता द्वारा निर्मित अग्निलहरी जैसे महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के जरिए समय-समय पर आकाशवाणी से जुड़ाव।

1991 से 1992 दूरदर्शन, दिल्ली के समाचार प्रसारण प्रभाग में अस्थायी तौर संपादकीय सहायक कार्य। कई महत्वपूर्ण वृतचित्रों हेतु शोध एवं आलेख। 1993 से निजी निर्माताओं व चैनलों हेतु 500 से अधिक कार्यक्रमों में निर्माण/ निर्देशन/ शोध/ आलेख/ संवाद/ रिपोर्टिंग अथवा स्वर। परशेप्शन, यूथ पल्स, एचिवर्स, एक दुनी दो, जन गण मन, यह हुई न बात, स्वयंसिद्धा, परिवर्तन, एक कहानी पत्ता बोले तथा झूठा सच जैसे कई श्रृंखलाबद्ध कार्यक्रम। साक्षरता, महिला सबलता, ग्रामीण विकास, पानी, पर्यावरण, बागवानी, आदिवासी संस्कृति एवं विकास विषय आधारित फिल्मों के अलावा कई राजनैतिक अभियानों हेतु सघन लेखन। 1998 से मीडियामैन सर्विसेज नामक निजी प्रोडक्शन हाउस की स्थापना कर विविध कार्य।

संपर्क -: ग्राम- पूरे सीताराम तिवारी, पो. महमदपुर, अमेठी, जिला- सी एस एम नगर, उत्तर प्रदेश डाक पता: 146, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली- 92 Email:- amethiarun@gmail.com . फोन संपर्क: 09868793799/7376199844

* Disclaimer : The views expressed by the author in this feature are entirely her own and do not necessarily reflect the views of INVC NEWS .

URL : https://www.internationalnewsandviews.com/panchayati-raj-system-time-to-look-in-the-mirror-reflection/

INTERNATIONAL NEWS AND VIEW CORPORATION
INVC
अंतरराष्ट्रीय समाचार एवं विचार निगम

12th year of news and views excellency

Committed to truth and impartiality

Copyright © 2009 - 2019 International News and Views Corporation. All rights reserved.

www.internationalnewsandviews.com